RESEARCH REVIEW JOURNALS
Volume-05
Issue-03
March -2020

ISSN: 2455-3085 (Online)
RESEARCH REVIEW International Journal of Multidisciplinary
www.rrjournals.com[Peer Reviewed Journal]

परिवर्तन के मूल स्वर और अंतिम दशक के हिन्दी उपन्यास

डॉ अनुज कुमार तरुण

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, मगध विश्वविध्यालय, बोधगया, बिहार

समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया निरंतर चलती रहती है। आज के इस भौतिक युग में जीवन के हर क्षेत्र में बहुत तेजी से बदलाव आ रहे हैं। भारत जैसा गरीब देश अब विकासशील देश की श्रेणी में गिना जाने लगा है तो प्रश्न खड़ा होता है कि विकास की यह प्रक्रिया क्या देश की आम जनता (गरीब, मजदूर, किसान, युवा) तक पहुँच पायी है? 50 वर्षों में इस वर्ग में जो परिवर्तन होना चाहिए, क्या वह हो पाया है? या फिर विकास का नारा इलैक्ट्रोनिक मीडिया के कर्णप्रिय स्वर और धुनों के साथ महानगरों में ही थिरकता रह गया? ऐसे कई प्रश्न है जो परिवर्तन के मूल स्वर को जानने के लिए विवश करते हैं।

बीसवीं सदी का अंतिम दशक विश्वव्यापी परिवर्तनों का काल है।नब्बे के दशक की शुरूआत में भारतीय इतिहास में एक नया मोड़ पैदा होता है। इस समय एक के बाद एक कई ऐसी महत्वपूर्ण घटनाएँ घटित होती हैं जो हमारी सोच के पारंपरिक ढांचे को तोड़कर हमें एक नयी दुनिया के सामने ला खड़ा कर देती है। इन घटनाओं में सबसे महत्वपूर्ण घटना थी, सन् 1990 में वी.पी. सिंह सरकार द्वारा मंडल कमीशन की सिफारिशों को लागू किये जाने की घोषणा, 1991-92 में आर्थिक उदारीकरण की शुरूआत और 1992 में अयोध्या में बाबरी मस्जिद का विध्वंस। पिछले डेढ़ दशक में भारतीय समाज में परिवर्तनों की जो बयार बहती है, उसका संदर्भ इन्हीं तीन घटनाओं से जुड़ता है। योगेन्द्र यादव लिखते हैं - "उस समय राष्ट्रीय क्षितिज पर एक साथ तीन मकार उभरे। यह सोवियत संघ के विघटन का भी समय था जिसने भारतीय राजनीति में समाजवादी मुहावरे का बोलबाला खत्म कर दिया था। ये तीन मकार हैं - मंडल, मंदिर और मार्केट।"

'आर्थिक उदारीकरण' ने देश में भूमंडलीकरण की स्थिति तैयार की और बाजारवाद एवं उपभोक्ता संस्कृति को प्रोत्साहित किया। मीडिया और संचार-क्रांति के औजारों से युक्त होकर बाजार ने हमारे यहाँ (विशेषतः शहरों में लेकिन गाँवों में भी इसके प्रभाव को कम कर के नहीं आंका जाना चाहिए) एक नयी मूल्य व्यवस्था पैदा की। वहीं उत्पादन-प्रणाली में परिवर्तन और सेवा क्षेत्र के विकास ने एक नयी समाज व्यवस्था पैदा की है।

बाबरी मस्जिद के विध्वंस ने देश में साम्प्रदायिकता को नये सिरे से उभारने का काम किया। इसने हमारे राजनैतिक-सामाजिक सोच तथा सहनशीलता की दिशा तय करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

कुल मिलाकर इन घटनाओं ने एक ऐसी मानसिक वृत का निर्माण किया जिसने सामाजिक सोच की हदें खींचने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। यह कहना शायद असंगत नहीं होगा कि इन मानसिक वृत से बाहर देख पाना समाज के लिए संभव नहीं हो पाया है। आज की सभी महत्वपूर्ण एवं गैर-महत्वर्पूण संवाद की जड़ को इन घटनाओं में ढूँढ़ा जा सकता है।

सामाजिक-आर्थिक परिवर्तन साहित्य में परिवर्तन की माँग करता है। अतः यह स्वाभाविक सा लगता है कि पिछले दो दशक के साहित्य में परिवर्तन की आहट सुनाई दे।

नब्बे के दशक के साहित्य में अपने समय की अनुगूँज पर्याप्त मात्रा में सुनाई देती है। इस दौर की कविताओं में बाबरी मस्जिद के विध्वंस के बाद पैदा हुई साम्प्रदायिकता के खतरे का स्वर भी सुनाई देता है और 'बाजार' के सामने बेबस और बौना होता जा रहा 'मनुष्य' और उसकी कुंठित जिजीविषा भी उभरकर सामने आती है। इस दौर में 'स्त्री लेखन' अपने लिए 'स्पेस' की माँग करता है। स्त्री के लिए स्त्री होना महत्वपूर्ण हो जाता है। दलित लेखक बड़ी संख्या में आत्मकथाओं और आत्मकथात्मक कहानियों एवं उपन्यासों के माध्यम से सदियों से खोयी हुई या छीन ली गयी अस्मिता को प्राप्त करने या कहें नये सिरे से सृजित करने का प्रयास करते हैं।

बदलते हुए जीवन को समेटने के लिए उपन्यासों को अपने लिए नये सामाजिक संदर्भ की तलाश करनी पड़ती है। यहाँ ध्यान रखना आवश्यक है कि सामाजिक परिवर्तन रातों-रात घटित नहीं होते। प्रायः ऐसा होता है कि समय बदल जाता है, समाज नहीं। समाज धीरे-धीरे बदलता

RRIJM 2015, All Rights Reserved

है, सोच उस से भी धीरे। यह बदलाव भी पूर्णता में नहीं होता। परम्परा के दबाव में कुछ चीजें जुड़ जाती हैं तो कुछ चीजें पीछे छूट जाती है। ऐसे में नब्बे के दशक में परिवर्तन की प्रक्रिया भी धीरे-धीरे धटित हो यह स्वाभाविक है। वैसे मीडिया-संचार क्रांति ने परिवर्तन की प्रक्रिया को पहले से द्रुत बनाने में सहायता की है, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। फिर भी परिवर्तनों का साहित्य में तत्कालिक रूपांतरण हो जाए यह व्यवहारिक स्थिति नहीं है। ऐसा रूपांतरण कविताओं में सबसे जल्दी और ज्यादा हो पाता है। उपन्यासों में प्रायः ऐसी तात्कालिकता और भावनात्मक रूपांतरण की स्थिति कम देखने को मिलती है। फिर भी इस दौर के कई उपन्यास अपने समय के यथार्थ को, अपने समय के अनुभव बोध को पकड़ने की कोशिश करते हैं। कई उपन्यासों में नये अनुभव, नयी जीवन स्थिति को पकड़ने के लिए नयी-भाषा एवं रूप तलाशने की कोशिश भी दिखलाई देती है। इस दौर के हिन्दी उपन्यास भी इन घटनाओं से प्रभावित हैं। इस दशक के उपन्यासों में नई सामाजिक संरचना के चिह्न देखे जा सकते हैं। ऐसे उपन्यासों में - भगवान दास मोरवाल का 'काला पहाड़', प्रियंवद कृत 'परछाई नाच', असगर वजाहत का 'सात आसमान' गीतांजली श्री कृत 'हमारा शहर उस बरस' सुरेन्द्र वर्मा कृत 'मुझे चाँद चाहिए' अलका सरावगी कृत 'कलिकथा वाया बाई पास', प्रभा खेतान कृत 'छिन्नमस्ता', जय प्रकाश कर्दम का 'छप्पर', मोहनदास नैमिशराय कृत 'मुक्तिपर्व' प्रमुख है।

यहाँ हम देखते हैं कि वर्तमान समय बदलाव लेकर आया है। रचनात्मकता प्रतिरोध लेकर खड़ी है, लगातार संकल्पनाएँ टूट रही हैं, प्राथमिकताओं का बिन्दु बदल रहा है, केन्द्र सरक रहा है, आभास और अटकल अपनी पराकाष्ठा पर है। मनुष्यता किसी सुनहरे भविष्य की तलाश में बदहवास सी भागती चली जा रही है। ईश्वर का अंत तो हो ही चुका था, इतिहास का अंत, कविता व उपन्यास का अंत, शब्दों का अंत जैसी घोषणाएँ भी हो रही हैं। नयी पूंजी एवं नई टेक्नालाॅजी ने ज्ञान की एक नई दशा खड़ी कर दी है। सब कुछ भव्य, उत्तेजक एवं लुभावना दिख रहा है। श्रद्धा, भक्ति, प्रेम, झूठ, बेइंसाफी, पाशविकता, उत्पीड़न, सबकी मौजूदगी अपने चरम पर है। पर एक रोमांचक ढंग से। नृशंसता, लाचारी सभी मात्र सनसनी खेज सीन के रूप में उपस्थित हैं, न कि अनुभव के रूप में। सारा कुछ बेहद तात्कालिक एवं क्षणिक है। और इन सब की बागडोर यदि किसी के हाथ में है, तो वह 'बाजार' एवं उसे शह देती सर्वशक्तिमान राजनीति। पिछले दो दशक की राजनीति का मूल आधार विविध अस्मिताओं के हितों का टकराव छोड़कर और कुछ भी नहीं रहा है। इसका उदाहरण भगवान दास मोरवाल का 'काला पहाड़' में देख सकते हैं। 'काला पहाड़' के पात्रों की कर्मभूमि 'मेवात क्षेत्र' है। आजादी के 64 वर्ष बाद 'मीडिया' विकासशील व कुछ क्षेत्रों में विकसित होने का जो राग अलाप रही है, उसके कसौटी पर अगर इस क्षेत्र को कसे तो यह क्षेत्र आज भी प्रेमचंद के अभावग्रस्त और बुनियादी सुविधाओं के लिए लालायित गाँव है।

रेणु के मैला-आंचल की तरह यह भी एक आंचलिक उपन्यास है, पर यहाँ दुर्भाग्य यह है कि रेणु का यह अंचल आजादी के तुरंत बाद का अंचल है, जहाँ राजनीतिक विचारधारा अपने लिए स्पेश बनाती है, आधुनिकता के प्रवेश में सदियों से सोया जीवन जागने लगता है पर मोरवाल का यह अंचल विकासशील भारत का अंचल विशेष है। जहाँ 'ग्लोबल विलेज' का राग गाया जा रहा है वही यह क्षेत्र आज भी विकास से कोसो दूर है।

उपन्यास की शुरूआत प्रधानमंत्री के आगमन और विकास की उम्मीद से होता है। अपनी गति से चलने वाला यहाँ के जीवन में फर्क उस समय पड़ता है, जब राष्ट्रीय स्तर पर भाजपा नेता लालकृष्ण आडवाड़ी द्वारा 'रथ यात्रा' की घोषणा की जाती है। इस घोषणा से वर्षों से कायम हिन्दु-मुस्लिम धार्मिक सद्भावना दरकने लगती है अखबार के माध्यम से यहाँ खबर आती है कि मेवाड़ दूसरा पाकिस्तान बनने वाला है। तब उपन्यास का प्रमुख पात्रा सलेमी अपने से प्रश्न खड़ा करता है जिस भाईचारे को भारत-पाक बंटवारा नहीं तोड़ पाया, वह आज टूटने के कगार पर क्यों है।

''...लेकिन दूसरा पाकिस्तान बनवा कौन रहा है - मनीराम, हरसाय बुद्धन या नबी खाँ, रोबड़ा और खुद उस जैसे लोग? नहीं अगर उस जैसे लोग चाहते तो पता नहीं ऐसा कब का हो चुका होता। उस जुम्मा ने तो कभी नहीं चाहा होगा जिसे अपने धंधे से ही फुरसत नहीं, और न ही कभी उस दादा भरपूला ने सोचा था जिसकी पूरी उम्र 'दादाखानू' पर गलेप चढ़ाते-चढ़ाते बीत गई। न कभी उस मंगतू ने सोचा होगा जिसकी अँगुलियाँ इस नगीना की नाक को बचाते-बचाते रील में लहुलुहान हो जाया करती थी।''... अगर इनमें से काई भी नहीं है जो चाहता है कि मेवात दूसरा पाकिस्तान बन जाए, तब फिर वे कौन हैं जो ऐसा चाह रहे हैं और ऐसा करने पर आमदा हैं?''

RRIJM 2015, All Rights Reserved

साम्प्रदायिक सद्भावना बिगाड़ने में मीडिया की भूमिका पर प्रश्न खड़ा करते हुए सलेमी कहता है - "घंटा बता रो है ... कहा बता रो है... तोहे अकीन है इन अखबारन पे... अन्यायी, ई बता कौन छोड़ के जारो है या इलाका ए... तू छोड़ के जा रो है या ई मनीराम छोड़ के जारो है... हें?

...तू छोड़ के ना जारो है... ई मनीराम छोड़ के ना जा रो है तो फिर कौन छोड़ के जा रो है... हरसाय, मेरी समझ में ई ना आ री है के आखर ऐसी खबरन् सू इन अखबारनालान ने मिला कहा है... अरे या इलाका में कुछ अच्छी बात भी तो होगी... उन्ने कोई तू ना छापों ये अखबार।।"

इस तरह हम देखते हैं कि राजनीति जहाँ एक ओर सभ्यता की समन्वयकारी भूमिका को छोड़कर विघटनकारी हो चुकी है, वहाँ बाजार ने मनुष्य को सच-झूठ के मौलिक द्वन्द्व से हटाकर आकांक्षा एवं प्रतीक्षा के द्वन्द्व में धकेल दिया है। असगर वजाहत कृत 'सात आसमान' में लेखक का अपने विरासत में नहीं लौटना इसी आकांक्षा के तहत नये सामाजिक संदर्भ की ओर इशारा करता है। यहाँ लेखक का अपने विरासत में नहीं लौटना सिर्फ शहर की ओर पलायन नहीं है बल्कि 'लाइफ स्टाइल' का चुनाव है, जो बाजार और उपभोक्ता संस्कृति की देन है।

उत्तर आधुनिकता के अंतर्गत दलित विमर्श में प्रतिरोध का आधार व अस्मिता की तलाश दो प्रमुख बिंदु हैं। एक ओर दलित विमर्श पूरा ब्राह्मणवाद के विरोध में खड़ा होता है दूसरी ओर दलित अस्मिता की पहचान व संघर्ष के लिए प्रेरणा दलित रचनाकार का अपना वैयक्तिक अनुभव बनता है।

इस दशक में स्त्री लेखन ने 'स्त्री-विमर्श' को जनतांत्रिक रूप प्रदान किया है। इस दशक के उपन्यासों में स्त्री ग्रामीण-परम्परा व रीति-रिवाजों एवं लोक संस्कृति में बंधे हुए सम्पूर्ण रूप में समस्त नारी जगत के संघर्ष अस्मिता के प्रश्नों से सीधा जुड़ती नजर आती है।

केंद्र से परिधि की ओर की यात्रा व विखंडन की प्रवृत्ति 'परिवार' में आरम्भ होती है। परिवार में विद्यमान जीवन प्रणाली बदल रही है। संयुक्त परिवार के विघटन के साथ-साथ प्रेम व विवाह संबंधी सभी मान्यताओं में परिवर्तन देखने को मिल रही है। आधुनिक व्यावसायिक-प्रतियोगिता से पूर्ण जीवन में 'विवाह' मानव जीवन की अनिवार्य स्थिति नहीं हो रहा है। 'मुझे चाँद चाहिए' में प्रेम के कई कोण व परिभाषाएँ हैं।

उदारीकरण ने बाजार को जन्म दिया और बाजार ने 'रिटेल मार्केटिंग' को। इस तरह के तमाम कम्पनियाँ कम लागत में अधिक मुनाफा के लिए बाजार पर अपना कब्जा जमाना चाहती है, इसके लिए 'मार्केटिंग मैनेजमेंट' पर विशेष ध्यान दिया जाता है। 'मैनेजमेंट' या प्रबंधन के लिए हमारे युवाओं को 'आकर्षक पैकेज' दिया जाता है इस कारण पिछले दो दशकों में प्रबंधकों की मांग देखते हुए शिक्षा में एम.बी.ए. जैसे कोर्स की डिमांड तेजी से बढ़ी है। मैनेजमेंट किसी व्यवसाय को सहज और व्यवस्थित चलाने के लिए बहुत जरूरी है पर इस दौर में इसका उद्देश्य सिर्फ अधिक-से- अधिक मुनाफा कमाना रह गया है। यहाँ काम करने वाला युवक भी अपने कर्तव्यों से दूर और विचारों से प्रोफेशनल होता जा रहा है। परछाई नाच उपन्यास में किंशुक कहता है -

"मैं काम करने लगा। शुरू में मैं शहर में ही भागदौर करता रहा। कभी दो लाख बटन खरीदता, कभी पाँच लाख मीटर तम्बू, कभी दस हजार लोहे की केतली, कभी पाँच सौ बोरे चावल, कभी पचास हजार कैचियाँ।"

किंशुक के माध्यम से कहा जा सकता है कि बाजारवाद के प्रभाव ने जहाँ आम आदमी को प्रोफेशनल रवैया अख्तियार करने पर मजबूर किया वहीं बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में काम करने वाले युवा तथा कर्मचारियों में जीवन के अन्य उद्देश्य तथा 'जाॅब आॅफ इंटरेस्ट' से भटका दिया, किंशुक आगे कहता है -

"मुझे इस जीवन के पीछे कोई तर्क समझ में नहीं आ रहा। कोई सार्थकता... अर्थवत्ता भी नहीं। क्या ऐसा उद्देश्यहीन निरर्थक जीवन सिर्फ मैं जी रहा था? या और भी थे? जीवन का यह एक नया पक्ष था मेरे सामने जो पूरी तरह क्रूर अराजक और तर्कविहीन था। जीवन की परिभाषा यही है, यह मैं मानने को तैयार नहीं था।"

इस प्रकार मैंने पाया कि अंतिम दशक के उपन्यास जीवन के प्रत्येक कोने में व्याप कर उस शक्ति केंद्र का विरोध करता है। जो मानवीयता को हाशिये पर ले जा रहा है। वह बड़ी-बड़ी वैचारिक लड़ाईयों का दावा नहीं करती पर औसत मनुष्य की हर छोटी-सी लड़ाई में शामिल होने को तैयार है।

हम देखते हैं कि बीसवीं सदी के पटाक्षेप ने एक संक्रमणशील समाज का निर्माण किया है। बदलते हुए इस समाज में मनुष्य सर्वाधिक निरीह स्थिति में है। वह अपने परिवेश में उपजे सत्ता केंद्रों-बाजार और राजनीति से अपनी

ओर अपने भविष्य की सुरक्षा चाहता है। हिन्दी उपन्यास इस जरूरत को समझता है। वह अपने तमाम ऊर्जा से इसका विरोध करता है एवं मनुष्य को एक सुनहरे भविष्य की कल्पना देता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची

- असगर वजाहत - सात आसमान, राजकमल प्रकाषन, दिल्ली, 1996
- गीतांजलि श्री - हमारा शहर उस बरस, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 1998
- प्रियवंद - परछाई नाच, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2000
- भगवान दास मोरवाल - काला पहाड़, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1999
- सुरेन्द्र वर्मा - मुझे चाँद चाहिए, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1993
- इस्सर, देवेंद्र - संघर्ष, परिवर्तन और साहित्य, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, प्रथम संस्करण 1996
- सं॰ चन्द्र, बिपिन मुखर्जी, मृदुला मुखर्जी आदित्य - आजादी के बाद का भारत, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 2002
- दुबे, अभय कुमार - लोकतंत्र के सात अध्याय, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
- दुबे, अभय कुमार - भारत का भूमण्डलीकरण, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
- पचैरी, सुधीश - उत्तर-आधुनिक साहित्यिक विमर्श, वाणी प्रकाशन, दिल्ली, 2000
- जोशी, पी.सी. - परिवर्तन और विकास के सांस्कृतिक आयाम, वाणी प्रकाशन, प्रथम संस्करण
    - जोशी, पी.सी. - संस्कृति विकास और संचार क्रांति: बदलते परिप्रेक्ष्य (अनु॰ सुनील कुमार सिंह), ग्रंथशिल्पी, दिल्ली, 2001
- इंजीनियर, असगर अली - भारत में सांप्रदायिकता: इतिहास और अनुभव, (अनु. सुभाष चंद्र), इतिहास बोध प्रकाशन, इलाहाबाद, 2004
- इस्सर, देवेंद्र - नयी सदी और साहित्य (प्रश्न, स्वप्न, सृजन), इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, दिल्ली, 2000

RRIJM 2015, All Rights Reserved